North Asian International Research Journal of Multidisciplinary

CIF IMPACT FACTOR:4.465

ISSN: 2454-2326 Vol. 4, Issue-11 November-2018

Index Copernicus Value: 58.12 Thomson Reuters ID: S-8304-2016

A Peer Reviewed Refereed Journal

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी
(ऋग्वैदिक काल के विशेष संदर्भ में)

डॉ. योगेश्वरी फिरोजिया
सहा. प्राधयापक
चित्रकला (ललितकला संकाय)
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं
कला विश्वविद्यालय,ग्वालियर–474002

नारी का महत्व अनादिकाल से है। भारत में वैदिक काल से ही नारी को बहुत आदर प्रदान किया गया है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी का सम्मान व आदर आदर्शात्मक एवं मर्यादायुक्त था। त्याग, बलीदान, सेवा, समर्पण, वात्सल्य, सहिष्णुता, धैर्य की प्रतिमूर्ति, कार्यकुशल–व्यवस्थापिका, गृहस्थी तथा सम्पूर्ण परिवार की आधारशिला नारी थी। भारतीय नारी के उपर्युक्त समस्त गुणों के कारण ही धर्मशास्त्र में नारी को सर्वशक्तिसम्पन्न, विद्याशील, ममता, यश और वैभव का प्रतीक सम्बोधित किया गया है। परिवार की अभिवृद्धि तथा समाज की संरचना और उन्नति में नारी की विशिष्ट भूमिका थी।[1] प्राचीन भारतीय स्मृतिकारों ने परिवार, समाज ही नहीं अपितु विधान अनुसार सृष्टि निर्माण में नारी के योगदान को सहर्ष स्वीकार किया है।

पुरातन सामाजिक व्यवस्था में नारी की अवस्था पुरुषों के समतुल्य थी। बाल्यकाल से ही वे बालकों के सदृश यज्ञोपवीत धारण कर शिक्षा ग्रहण करती थीं। पुरुषों के समान उन्हें समस्त बौद्धिक, आध्यात्मिक सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्राप्त थे। वे स्वतंत्र रूप से धार्मिक कार्य सम्पादित कर सकती थी।[2] समाज में शिक्षित महिलाओं को विशेष सम्मान प्राप्त था, गंभीर विषयों पर उनके परामर्श को मान्यता प्राप्त थी।[3] सामाजिक कार्यों में नारी की उपस्थिति शुभफलदायी मानी जाती थी। माता,

पत्नी तथा कन्या रूप में परिवार व समाज में वे आदृत थीं। भारतीय विद्वानों ने नारी के माता, पत्नी ओर कन्या रूप का गरिमामय वर्णन करते हुए 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का गरिमामय वर्णन किया है।[4]

वेद भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में उपलब्ध सबसे प्राचीनतम ग्रंथ है। विद्वानों के अनुसार सृष्टि में मानव–सभ्यता के उदय से ज्ञात इतिहास अर्थात् उस चिर 'आदिकाल' से वेदों का मानव से सम्बन्ध है। ऐसे प्राचीनतम ग्रन्थ का सहित्यिक ही नहीं अपितु बहुआयामी महत्व है। प्राचीन होने के कारण वेदों का अध्ययन जितना उपयोगी है, उतना ही रोचक भी। अतः ऋग्वेद में नारी सम्बन्धी विषय का अध्ययन अपने आप में महत्वपूर्ण है। परवर्ती साहित्य को आधार बनाकर कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद से नारी संबंधी परम्पराओं को उल्लेखित किया है जिनके अध्ययन के द्वारा वेदकालीन नारी को प्रस्तुत शोधपत्र में विवेचित करने का प्रयास किया गया है।[5]

वेदकालीन समाज का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि समाज में नारी के प्रति उदारता एवं समानता विद्यमान थी। माता–पिता के स्नेह एवं प्रेम की अक्षय राशि 'कन्या' को प्राप्त थी।[6] अर्थात् आर्यों को कन्याएँ, पुत्र के समान प्रिय थीं। वे पूषा देवता से कमनीय कन्या की कामना करते थे।[7] इस विषय में विद्वानों के भिन्न –भिन्न मत हैं। प्रशान्तकुमार के मतानुसार 'कन्या' शब्द से तात्पर्य है सभी के द्वारा वांछनीया।[8] कन्या शब्द का एक अन्य भिन्न पर्याय 'दुहिता' भी है। यह शब्द दुह (दुहना) धातु से बना है। इस विषय में विद्वानों यथा आचार्य बलदेव उपाध्याय,[9] पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी,[10] श्री प्रशान्त कुमार,[11] डॉ. कमला,.[12] डॉ. लता सिंह,[13] सुश्री सुषमा शुक्ला,[14] आदि के अनुसार गौ रक्षा का प्रधान कार्य कन्याओं द्वारा सम्पादित किया जाता था, अतः उहें 'दुहिता' शब्द से सम्बोधित किया गया है। गृह के समस्त कार्य, कृषि सम्बन्धी समस्त कार्य सम्पन्न कर व माता–पिता को विश्राम प्रदान करती थी। डॉ. कमला के कथनानुसार वस्तुतः वेद पुत्र–पुत्री में भेद नहीं करता, यही कारण है कि पुत्र के अभाव में दौहित्र को पौत्र के रूप में स्वीकार किया जाता था। मनु ने ऋग्वेद के इस तथ्य को अपनी स्मृति में 'जैसा पुत्र वैसी पुत्री' सम्बोधित कर पुष्ट किया है। ऋग्वेद में एक स्थल पर माता ने 'मेरी पुत्री विराट्' कहकर पुत्री के प्रति अपनी गौरव–भावना को व्यक्त किया है।[15]

वेदकालीन समाज में ऋग्वेदीय कन्याओं की शिक्षा–दीक्षा का स्पष्ट उल्लेख है। 'पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते' द्वारा यह ज्ञात होता है कि उपनयन संस्कार के पश्चात् कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी।[16] ब्रह्मचर्यपूर्वक शिक्षा पूर्ण करने वाली कन्याओं का उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों में किया गया है।[17] बृहद्देवता में ऋग्वेद की 26 ऋषिकाओं का उल्लेख किया गया है[18] जिन्हें 'ब्रह्मा' जैसे ऋत्विक पद के योग्य कहा गया है। ब्रह्मवादिनी नारियों में याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी मैत्रेयी एवं उन्हीं याज्ञावल्क्य से शास्त्रार्थ करने वाली वाचान्कवी गार्गी का वेदों में प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है।[19]

वेदों में मानवीय सभ्यता की उन्नति का द्वितीय सोपान गृहस्थाश्रम को कहा गया है, जिसमें प्रवेश कर मनुष्य अपने विविध कर्त्तव्यों का पालन करता है। वेदकालीन समाज में विवाह एक पुण्य संस्कार था। जिसका मात्र शारीरिक महत्व न होकर आध्यात्मिक महत्व भी था। वैदिक साहित्य में गृहस्थाश्रम के महत्व तथा कर्त्तव्य आदि का अत्यंत विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त कथन से यह अनुमानित होता है कि यदि उस काल में भी विवाह आधुनिक युग की भाँति युवावस्था में सम्पन्न होते थे।[20] व्याकरण में युवती शब्द जो कि 'यु मिश्रणे' (अदादि) धातु से निर्मित हुआ है, जिसका अभिप्राय 'मेल करने योग्य' अवस्था का सूचक है,[21] एवं इसी प्रकार ऋग्वेद के 10.183.2[22] में कन्या को ऋतुकालानन्तर, सौभाग्यसम्पन्न होने का कथन भी उसकी युवावस्था को इंगित करता है। तत्कालीन समाज में कन्याओं को स्वयंवर व प्रेमविवाह करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। अविवाहित कन्याओं के प्रेमी होते थे, व वे अपने प्रेमियों से निर्धारित स्थल पर भेंट किया करती थीं। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय का इस विषय में विचार है कि ऋग्वैदिक कन्याएँ यदा–कदा इस प्रकार का साहस प्रदर्शित करती थीं।[23] इस विषय में ऋग्वेद 2.35.4[24] में नदियों और समुद्र की उपमा देते हुए कहा गया है कि जैसे नदियाँ स्वयं समुद्र को प्राप्त करती हैं ऐसे ही युवतियाँ युवकों को प्राप्त करती हैं।

इस विषय में विद्वानों का कथन है कि उस समय सार्वजनिक मेलों या उत्सवों का आयोजन किया जाता था, जिन्हें 'समन' कहा जाता था। 'समन' का आकर्षण साधारणतः अश्वों व रथों की दौड़ हुआ करती थी, किन्तु उसका मुख्य आकर्षण जीवनसाथी का चयन करने का अवसर प्राप्त करता होता था। सौन्दर्य, आकर्षण का प्रमुख कारक है, स्त्री सौन्दर्य की ओर पुरुष सरलतापूर्वक आकृष्ट होते हैं।

अतः वैदिक युवतियाँ युवकों को आकर्षित करने हेतु श्रृंगार प्रसाधन से युक्त होकर इन उत्सवों में जाती थीं। अपने प्रयोजन की पूर्ति हेतु युवतियाँ युवकों के समक्ष कुछ विशिष्ट मुद्राओं का भी प्रदर्शन करती थीं। इस विषय में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि स्वयं माताँ अपनी पुत्रियों को समन में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित करती थीं। इस संदर्भ में सौन्दर्यगर्विता कन्याओं का भी उल्लेख किया गया है, जो सरलतापूर्वक अपने सौन्दर्य के कारण मनोनुकूल जीवनसाथी को प्राप्त करती थीं। मुस्कुराने के साथ कुछ विशिष्ट मुद्राओं का भी प्रदर्शन कर सफलता प्राप्त करती थीं। विवाहित स्त्रियाँ भी नवीन वस्त्र धारण कर प्रसाधित होकर इन उत्सवों का आनन्द लेती थीं। वस्तुतः कन्याऐं माता–पिता के द्वारा लालित–पालित होती थीं तथा उन्हीं के संरक्षण में वृद्धि को प्राप्त होती थीं।[25]

इसी प्रकार वैदिक साहित्य में कन्या के विवाह उपरांत उसके पत्नि रूप का भी वर्णन प्राप्त होता है, 'जायेदस्तम्' भावार्थ पत्नी ही घर है, यह उक्ति पत्नी को गृहिणी का गौरवमयी पद प्रदान करती है।[26] जिस प्रकार प्रकृति के अभाव में पुरुष कर्महीन है, उसी प्रकार स्त्री के अभाव में मानव का सम्पूर्ण जीवन अपूर्ण ही रहता है।

ऋग्वेदानुसार पति की पत्नी सखा है, मित्र है और अर्धांगिनी है। पति–पत्नी के भौतिक स्वरूप को एक आवश्यक प्राकृतिक क्रिया के रूप में स्वीकार किया गया है। उनके मिलन को मेघ और पृथ्वी के सदृश सूर्य–उषा, सूर्य–रात्रि, द्यौ पृथिवी आदि उदाहरणों द्वारा रूपात्मक स्वरूप में विवेचित किया गया है।[27]

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार जो पुरुष अपत्नीक हो वह 'अयज्ञीय' (जिसे यज्ञ करने का अधिकार न हो) होता है। शतपथब्राह्मण के अनुसार जाया (स्त्री) पुरुष की 'अर्ध' (आधी) होती है एवं उसे प्राप्त करने पर ही मनुष्य 'सर्व' (पूर्ण) बनता है। अग्निहोत्र आदि यज्ञों के अनुष्ठान के लिए पत्नी का महत्व इस तथ्य से प्रतिपादित होता है कि पत्नी की मृत्यु हो जाने पर पुरुष के लिए पुनर्विवाह का विधान किया गया था जिससे कि वह यज्ञ आदि धार्मिक अनुष्ठान कर सकें। क्योंकि धार्मिक अनुष्ठान पत्नी के अभाव में पूर्ण नहीं हो सकता। अतः धार्मिक कर्मकाण्ड के अनुष्ठान हेतु भी विवाह की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त रति मानव जीवन का एक अंग है जो कि मर्यादित रूप में विवाह द्वारा ही प्राप्त होता है। प्राचीन शास्त्रकारों ने धर्म और मोक्ष के साथ 'अर्थ' और 'काम' का निरूपण करते हुए

यह प्रतिपादित किया है कि काम का सेवन धर्मानुकूल रूप में विवाह द्वारा ही सम्भव है। काम या रति का सेवन यदि विवाह के अभाव में किया जाए, तो धर्मविरुद्ध होने के कारण वह समुचित न होगा। विवाह द्वारा गृहस्थ होकर मनुष्य धर्म का पालन, धर्मानुकूल अर्थ (सम्पत्ति) का उपार्जन तथा धर्मानुमत प्रकार से काम का सेवन करता है। इस प्रकार वह न केवल अपना सांसारिक अभ्युदय करता है अपितु स्वर्ग का भागी होकर मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ होता है।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि वैदिक साहित्य में 'सख्य, सौख्य एवं सन्तान' उत्पत्ति द्वारा सौभाग्यशाली बनाने के लिए पत्नी को ग्रहण किये जाने का कथन है।[28]

वैदिक साहित्य में विवेचित 'जाया' शब्द स्त्री के मातृ पद का द्योतक है।[29] माता के लिए वाचक अनेक शब्द यथा मातर, जनि, जनित्री, प्रभू, तू, अम्बा, अम्बि अथवा अम्बी इत्यादि वेदों में प्राप्त होते हैं। वेदों में अनेक स्थान पर देवमातृकाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है यथा अग्नायी, अदिति, अनुमति, अप्सरा, अरुणइति, सूर्या, इड़ा, इन्द्राणी, उषा, दिती आदि देव माताओं का आदर और सम्मान के साथ अनेक ऋचाओं में स्तवन किया गया है।[30]

वसिष्ठ के अनुसार दस उपाध्यायों से अधिक गौरव आचार्य का है, सौ आचार्यें से अधिक पिता का और एक हजार पिताओं से अधिक माता का। आपस्तम्ब, बौधायन तथा वसिष्ठ जैसे धर्मशास्त्रकारों की व्यवस्था अनुसार दुराचारी पिता का त्याग किया जा सकता है किन्तु माता नहीं छोड़ी जा सकती। अतः माता का सम्मान करना और उसका भरण–पोषण करना पुत्र का परम् कर्त्तव्य माना गया है। स्मृतिकारों ने भी माता को 'परम गुरू' मानकर परिवार एवं समाज में उसकी सर्वोच्चता दर्शित की है।[31]

वेदकालीन नारी के सांस्कृतिक पक्ष में पूर्व के विद्वानों द्वारा किये गये कार्यों का अनुशीलन करते हुए शोधार्थी ने उन तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो नारी सौन्दर्य भावना को व्यक्त करने में सहायक हुए। नारी सौन्दर्य भावना का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम ऋग्वेद में माना गया है जिसका वर्णन पूर्व में अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है यथा रमनपाल,[32] बलवीर आचार्य,[33] वाचस्पति गैरोला,[34] गोविन्दचंद राय,[35] प्रशान्त कुमार,[36] धीरेन्द्र कुमार,[37] आदि ने भी किया है।

वेदकाल में अनेक स्थानों पर नारी के नख–शिख का वर्णन हुआ है, जो प्रायः प्रशंसा रूप में है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कन्याओं के लालिमायुक्त गौर वर्ण के लिए अनेक शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यथा – सुदृशी, देखने में सुन्दर लगने वाली, सुद्युम्ना – सुन्दर कान्ति वाली, सुवर्चा, अर्थात् तेजस्विनी आदि। ऋग्वेद में नारी सौन्दर्य का वर्णन अधिकांशतः उषा तथा रात्रि के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। सूर्य की एक पुत्री रात्रि जो तारों से भूषित एवं दूसरी उषा, जो अपनी लालिमा से युक्त रूप वाली है। एक मन्त्र मे स्त्री के सुन्दर अवयवों वाले सुडौल शरीर को सौन्दर्य का लक्षण मानकर उसकी प्रशंसा की गई है। 'सुप्रतीका' विशेषण उसके सन्तुलित, आकर्षक शारीरिक उभारों के सौन्दर्य को इंगित करता है।[38] ऋग्वेद के 1.123.10 में उषा को शरीर सौन्दर्य गर्विता कन्या के समान बताते हुए अगले मन्त्र में उसे माता द्वारा अपने हाथों से सजायी गई रूपवती कन्या कहकर सम्बोधित किया गया है।[39]

विवेचित उदाहरणों का अध्ययन करने पर यह अनुमानित होता है कि वेदकालीन आचार्यों ने नारी सौन्दर्य का प्राकृतिक उपमाओं के माध्यम से वेद में नारी सौन्दर्य को प्रकट किया है।

ऋग्वेद 1.124.8[40] में सूर्य की किरणों से सुशोभित उषा को 'समन' में जाने वाली स्त्रियों के सादृश्य अलंकार धरण करने वाली तथा उसकी स्मिता (मुस्कुराहट) को घृतधारा के रूप में वर्णित किया है।[41]

सामाजिक समारोह एवं उत्सवों में स्त्रियों की अलंकृत स्थिति द्वारा आभूषणों के प्रचलन एवं रूचि का बोध होता है द्वग्वेद 8.46.33[42] तद्युगीन नारियाँ भी स्नान उपरांत भद्रवेश एवं अलंकरण द्वारा श्रृंगार प्रसाधन का पालन करती थीं। नारियों की इस सौन्दर्यात्मक स्थिति का वर्णन, 5.80.5 में किया गया है।[43]

नारी के भौतिक सौन्दर्य के संलग्न ही आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसके श्रेष्ठ गुणों की प्रशंसा कर दुर्गुणों का नारी की आन्तरिक असुन्दरता माना है तथा उन्हें दूर करने की प्रेरणा दी गई है। वेदों में नारी के आन्तरिक सौन्दर्य को व्यक्त करने वाला सबसे महान् शब्द 'देवी' है। वेद ने नारी को देवी सम्बोधित कर उसे दिव्यगुण सम्पन्न, सरल, सौम्य एवं ममतामयी माना है। वेद के अनुसार

शीलवती कन्या अपने श्रेष्ठ कार्यों द्वारा यशस्वी बनती है तथा उसका यश कभी क्षीण नहीं होता। नारी के गुणों, स्वभाव, श्रेष्ठ आचरण एवं आन्तरिक सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने वाले अनेक विशेषणों यथा ऋतस्य देवी – सत्य की देवी, ब्रह्मजाया – पवित्र आचरण वाली स्त्री, तथा सुनृता, सुतरा, यज्ञिया, सत्या सत्येभिमर्हती आदि शब्दों के अतिरिक्त नदी, औषधी, जल, पृथ्वी रसा, इडा, द्यौ आदि को वेद में माता रूप में सम्बोधित कर नारी के आन्तरिक स्वरूप को विवेचित करने का प्रयास किया गया है।[44]

यहाँ यह उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि वेदाचार्यों ने प्राकृतिक उपमाओं के माध्यम से न केवल नारी सौन्दर्य को विवेचित किया है अपितु उन अवस्थाओं, परिस्थितियों, ऋतुओं, आयोजनों एवं अवसरों को भी अप्रत्यक्ष रूप से इंगित किया है कि सभी प्रकार से समय एवं अवस्थानुसार नैतिकता का पालन करते हुए नारी को स्वयं को समाज में किस भाँति प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करते हुए, वेदाचार्यों ने नारी के श्रेष्ठ शारीरिक लक्षणों सहित उसके आचरण, व्यवहार, संयम, धैर्य, लज्जा, विवेकशीलता, बुद्धिमता, वेश–भूषा, आभूषण, अलंकरण, केश–विन्यास, श्रृंगार–प्रसाधन, वाणी, शिक्षा, संस्कार, क्षमाशीलता, नैतिकता के माध्यम से उसके आन्तरिक गुणों को भी विवेचित किया ळें

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. घल्डियाल, अच्युतानन्द, प्राचीन, भारतीय स्मृतिकार और नारी, पृ. 19
2. शर्मा, रीता, प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 59
3. विद्यालंकार, सत्यकेतु, प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन, पृ. 206
4. कल्याण, नारी अंक, शीर्ष लेख – नारी–धर्म पृ. 19
5. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 19 एवं 38
6. वही पृ. 38
7. सिंह, लता, भारतीय संस्कृति में नारी, पृ. 9
8. कुमार, प्रशान्त, वैदिक साहित्य में नारी, पृ. 9
9. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 424
10. त्रिवेदी, रामगोविन्द, वैदिक साहित्य, पृ. 71
11. कुमार, प्रशान्त, वैदिक साहित्य में नारी, पृ. 25

12. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 39
13. सिंह, लता, भारतीय संस्कृति में नारी, पृ. 10
14. शुक्ला, सुषमा, वैदिक वाड्.मय में नारी, पृ.–
15. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 162
16. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 420–421
17. त्रिवेदी, रामगोविन्द, वैदिक साहित्य, पृ. 76
18. जोशी, लक्ष्मणशास्त्री, वैदिक संस्कृत का विकास, पृ. 47
19. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 422
20. गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 388
21. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 110
22. त्रिवेदी, रामगोविन्द, हिन्दी ऋग्वेद, ऋग्वेद, 10.183.2, पृ. 1462
23. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 110
24. त्रिवेदी, रामगोविन्द, हिन्दी ऋग्वेद, ऋग्वेद, 2.35.4, पृ. 343
25. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 111
26. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 115
27. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 115–116
28. शुक्ला, सुषमा, वैदिक बाड्.मय में नारी, पृ. 123
29. शुक्ला, सुषमा, वैदिक बाड्.मय में नारी, पृ. 123
30. अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, वैदिक देवता दर्शन, पृ. 1, 58, 66, 71, 105, 148, 191, 195, 263 एवं 270
31. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 387–389
32. पाल, रमन, ऋग्वेद में लौकिक सामग्री, पृ. 187–189
33. आचार्य, बलवीर, ऋग्वेद ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 127–132
34 गैरोला, वाचस्पति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ. 456–458
35. राय, गोविन्दचन्द्र, वैदिक युग के भारतीय आभूषण, पृ. 3

36. कुमार, प्रशान्त, वैदिक साहित्य में नारी, पृ. 136–137

37. सिंह, धीरेन्द्र कुमार, ब्राह्मण ग्रन्थो में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, पृ. 169–173

38. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 157

39. त्रिवेदी, रामगोविन्द, हिन्दी ऋग्वेद, ऋग्वेद, 1.123.10, पृ. 187

40. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 158

41. त्रिवेदी, रामगोविन्द, पूर्वोक्त ऋग्वेद, 1.124.8, पृ. 188

42. उक्त पूर्वोक्त ऋग्वेद, 8.46.33, पृ. 999

43. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 159

44. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 162